International Journal of Sanskrit Research 2020; 6(6): 58-60

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2020; 6(6): 58-60
© 2020 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 22-08-2020
Accepted: 02-10-2020

आसुतोष कुशवाहा
[1] शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय रामपुर, उत्तर प्रदेश, भारत
[2] महात्मा ज्योतिबा फुले रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली, उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
आसुतोष कुशवाहा
[1] शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय रामपुर, उत्तर प्रदेश, भारत
[2] महात्मा ज्योतिबा फुले रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली, उत्तर प्रदेश, भारत

श्री रामचन्द्रसूरि कृत नलविलास नाटक में प्रकृति वर्णन

आसुतोष कुशवाहा

प्रस्तावना

श्री रामचन्द्रसूरि कृत नलविलास नाटक सात अंकों में निबद्ध है। यह श्रृंगार रस प्रधान नाटक है। इसका नायक निषध देश का राजा नल एवं नायिका विदर्भराजपुत्री दमयन्ती है। इन्हीं दोनों के प्रेम प्रसंग पर घटना उत्तरोत्तर घटित होकर पूर्ण मिलन से समाप्त हुई है।

प्रस्तुत नाटक में कवि रामचन्द्रसूरि ने अनेक स्थलों पर प्रकृति से सम्बन्धित वर्णन किया है। नाटक के प्रथम के प्रारम्भ में प्रकृति चित्रण से ओत–प्रोत होकर नायक नल आम्रवृक्ष की सुन्दरता का स्वाभाविक वर्णन किया है।

आपाकपि०जरफलोत्करपि⃝भासो
भास्कत्कर प्रसररोधिगुलुच्छभाजः।
कूलत्पिकीकुलकुलायकलापवन्तः
प्रीणन्ति पश्य पथिकान् सहाकर वृक्षाः। [1]

अर्थात् देखो, पूर्णरूप से पके हुए सनहरे फलों के ढेर से पीले कान्ति वाले सूर्य की किरणों के विस्तार को रोकने के लिए जिन्होंने गुच्छे का रूप धारण कर लिया है तथा जहाँ शब्द करते हुए कोकिल समूह अपने घोसले में कलरव कर रहे है ऐसे आम का वृक्ष पथिक जनों को आनन्दित कर रहे हैं। [2]

पुनः राजा नल जल–कुक्कुट, जंगली मुर्गा, पपीहा, चकवा, कोयल, भौरों की आवाज से गुंजायमान लता समूह, जल क्रीडा के सरोवर, नव पुष्पित चमेली लताओं से युक्त उद्यान की भूमि के विषय में उद्‌गार व्यक्त करते हैं–

दात्यूहकुक्कुभकपि०जल चक्रवाक–
सार⃝भृ⃝कलकूचितम०जुलकुम्जाः।
उद्यानकेलिसरसीनवफुल्लमल्ली–
वल्लीगृहा⃝णभुवो रमयन्ति चेतः।। [3]

प्रकृत नाटक के तृतीय अंक में विदर्भ देश आये हुए दमयन्ती के स्वयंवर के निमित्त राजा नल वसन्तऋतु की सुषमा की व्य०जना में पूरे संसार को भोगमय बताते हैं।

परिमलभृतो वाताः शाखा नवा ऽ कुरकोटयो
मधुकररूतोत्कण्ठाभाजः प्रियाः पिकपक्षिणाम्।
विरलविरलस्वेदोद्‌गारा वधूवदनेन्दवः
प्रसरति मधौ धात्र्यां जातो न कस्य गुणोदयः?।। [4]

अर्थात् सुगन्ध को धारण करने वाला वायु, शाखाओं के नवलल्लव समूह, भौरों की गु०जन ध्वनि और कोयल पक्षी की प्रियाओं की कू–कू ध्वनि, प्रिय के लिए उत्कठित युवतियों के चन्द्रमारूपी मुखमण्डल पर कुछ–कुछ पसीने को बहाने वाले बसन्त ऋतु के इस पृथ्वी पर विस्तार हो जाने पर ऐसा कौन सा गुण है जो उत्पन्न नहीं हो जाता है? [5]

चारों ओर बसन्त ऋतु की सुन्दरता को देखकर राजा नल आनन्दित होकर फिर कहते हैं कि–

अभिनभः प्रसृतैर्नवमल्लिकाकुसुमपु०जरजोभिरयं मुधः।
यवनिकां विदधाति वियोगिनां शशिकरव्यतिष⃝निवृत्तये।। [6]

अर्थात् आकाश में फैले हुए नवीन मल्लिका पुष्प समूह के परागरूपी धूलि के द्वारा यह बसन्त के लिए चन्द्रमा की किरणों के सम्पर्क को रोकने हेतु आकाश में पर्दे का रूप धारण कर रहा है। [7]
राजा नल सहकारवीथी में दमयन्ती का हाथ पकड़े हुए प्रकृति के तुल्य उसके हाव–भाव, शरीरा◌ों का वर्णन करते हैं–

इमौ प्रे◌ख़े कर्णो वदनमिदमिन्दुः स्फुटकलः
कलः सोऽयं नादस्तरूणकलकण्ठीकलकलः।
इयं मल्लीवल्लीपुलकमुकुला◌ा भुजलता
वसन्तश्रीः साक्षात् त्वमसि मदिराक्षि! ध्रुवमतः।। [8]

अर्थात् हिलते हुए दोनों कानों वाली, व्यक्त कलाओं वाले चन्द्रमा के समान मुख वाली, युवा मयूर सदृश मृदुवाणी वाली तथा मल्लिका लता के खिले हुए पुष्पों सदृश बाहुपाश वाली हे मदिराक्षि! तुम मूर्तरूप में वसन्तरूपी लक्ष्मी हो। [9]
इसी प्रकार से फिर नल दमयन्ती के भाव–भंगिमा की तुलना प्रकृति के अन्तः एवं वाहय रूप से तादात्म्य स्थापित करते हुए उद्गार व्यक्त करते हैं–

चन्द्रोद्यानसरांसि सुन्दरि! मनः कर्षन्ति तावद् गुणै–
र्यावन्नेत्रदले तवास्यकमले दृष्टिर्न विश्राम्यति।
तावत् कोऽपि कलालवो विजयते खद्योतपोत्विषां
यावन्नात्मकरैर्धिनोति धरणिं देवः सुधादीधितिः।। [10]

इस नाटक में दमयन्ती पत्र में स्वयं को विद्युत और नल को मेघ से तादात्मय स्थापित करके अपने अनन्त प्रेम को प्रकृति के सदृश बताती है–

सौदामिनीपरिष्व◌ं मु०चन्त्यपि पयोमुचः।
न तु सौदामिनी तेषामभिष्व◌ं विमु०चति।। [11]

प०चम अंक में राज्यच्युत नल पत्नी दमयन्ती से स्वसुर गृह जाते हुए पैदल चलने से उत्पन्न कष्ट का अनुभव न हो इसलिए वन के सौन्दर्य का वर्णन करते है–

एते निर्झरझात्कृतैस्तुमुलितप्रस्थोदराः क्ष्माधराः
कि०चैते फलपुष्पपल्लवभरैर्ध्वस्तातपाः पादपाः।
चक्रोऽत्येष वधूमुखार्द्धदलितैर्वृत्तिं विधत्ते बिसैः
कान्तां मन्द्ररूतस्थैष परितः पारापतो नृत्यति।। [12]

अर्थात् पर्वतीय झरनों के कल–कल शब्द से शब्दायमान कन्दराओं वाले ये पर्वत है और फल–फूल तथा पत्र समूह के कारण ग्रीष्म के ताप से रहित छाया वाले ये वृक्ष समूह है। यह चक्रवाक पक्षी अपनी प्रिया चक्रवाकी द्वारा आधी चबायी हुई कमलनाल को खा रहा है तथा यह मन्द शब्द करने वाला कबूतर अपनी प्रिया के चारों तरफ धीरे–धीरे नाच रहा है। [13]
षष्ठ अंक में नल दमयन्ती के वियोग में सन्ध्या कालीन प्रकृति के दृश्यों का स्मरण करते हुए दमयन्ती के दशा विशेष में चिन्तित होकर वन का वर्णन करते हैं–

स्फुरति तिमिरे घूमव्राते ध्वनत्यतिभैरवं
ककुभि ककुभि व्यालानीके विसर्पति सध्वनौ।
चरममचलं याते पत्यौ रूचां चकितेक्षणा
शरणमधिकं भीरूर्देवी करिष्यति किं वने?।। [14]

अर्थात् किरणों के स्वामी सूर्य के अस्ताचल चले जाने पर अन्धकार में अल्लुओं की अतिभयावह घूँ–घूँ की ध्वनि फैल रही है। प्रत्येक दिशा में ध्वनि करते हुए हिंसक जीव–समूह भ्रमण करने लगे है। ऐसे में आश्चर्य चकित होकर देखती हुई असहाय बना दी गई अधिक डरने वाली देवी दमयन्ती वन में क्या करेगी?।। [15]
वन में दमयन्ती नल के विषय में जीव–जन्तुओं को परिवार का सदस्य मानकर हाथी के पत्नी को माता, मृग को पिता, मयूर को भाई कहकर सम्बोधित करके पूछती है।

मातः कु०जरपत्नि! तात हरिण! भ्रातः शिखण्डिन्! कृपां
कृत्वा ब्रूत मनाक् प्रसीदत कृतो युष्माकमेषोऽ०जलिः।
दृष्टः क्वापि गवेषयन्निह वने भीमात्मजां नैषधो
भूपालः सरणिं सृजन्नविरलैर्बाष्पोर्मिभिः प◌लाम्।। [16]

नाटक के षष्ठ अंक के अंत में वियोगजन्य दुःख के कारण संध्या के समय की लालिमा रूपी अग्नि में प्रवेश करती हुई कुमुदिनी को मानो निषेध करने के लिए ऊपर उठे हाँथ (किरणों) वाला चन्द्रमा आ ही रहा है का वर्णन किया गया है। [17]।।

प्रविशन्तीं कैरविणीं सन्ध्यारागानले विरहदुःखात्।
कुवलयपतिरयमेष प्रतिषेद्धुमिवोर्ध्वकर एति।। [18]

सप्तम अंक के प्रारम्भ में अयोध्यापति दधिपर्ण प्रातः कालीन समय का मनोहर चित्रण करते है–

सहस्रांशोर्धाम्नां दिशि दिशि तमोगर्भितमिदं
कुलायेभ्यो व्योम्नि व्रजति कृतनादं खगकुलम्।
दवीयस्तामेतान्यपि जहति युग्मानि शनकै
रथा◌ानामस्यां सपदि वरदायास्तटभुवि।। [19]

प्रथम अंक में राजा नल दमयन्ती का चित्र देखकर उसके पूरे शरीर को प्रकृति के सदृश प्रतीकात्मक बिम्ब प्रस्तुत किया है–

वक्त्रं चन्द्रो नयनयुगली पाटलाम्भोजयुग्मं
नासानालं दशनवसनं फुल्लबन्धूकपुष्पम्।
कण्ठः कम्बुः कुचयुगमथो हेमकुम्भौ नितम्बौ
ग◌ारोधश्चरणयुगलं वारिजद्वन्द्वमेतत्।। [20]

अर्थात् दमयन्ती के मुख में चन्द्रमा ने, दोनों नेत्रों में पीत–रक्त वर्ण के दो कमल ने, नासिका में कमलनाल ने, दाँतों के निवास स्थान में खिले हुए बन्धूक पुष्पों ने, गले में शंख ने, स्तनद्वय में दो स्वर्ण कलशों ने, दोनों नितम्बों में ग◌ा की धारा को अवरूद्ध करने वाले दो तट ने तथा इसके दोनो चरणों में दो कमल ने अपना निवास स्थान बनाया है। [21]

निष्कर्ष

इस प्रकार से श्री रामचन्द्रसूरि ने नलविलास नाटक में श्रृंगार रस के संयोजन में उद्दीपन रूप में प्रकृति का चित्रण किया है। इसमें प्रातःकालीन, सन्ध्याकालीन, वियोगजन्य स्थिति, दमयन्ती के रूप सौन्दर्य का प्रकृति के साथ तादात्म्य एवं मानवीकरण, वसन्तऋतु का वर्णन किया है। यह प्रकृति चित्रण कवि की अपनी कल्पना प्रतिभा के आधार पर पात्रों की मनोदशा को अवगत कराने के लिए आश्रय बनाया गया है। प्रकृति वर्णन नाटक में नाटककार ने देशकाल, वातावरण का ज्ञान कराने के लिए कथावस्तु में ग्रहण किया है। जिससे दर्शक, सामाजिक, आदि का मनोरंजन हो सके।

सन्दर्भ

1. नलविलास–टीकाकार–डॉ0 धीरेन्द्र मिश्र–1/11
2. नलविलास–टीकाकार–डॉ0 धीरेन्द्र मिश्र–पृष्ठ–9
3. नलविलास–टीकाकार–डॉ0 धीरेन्द्र मिश्र– 1/12
4. नलविलास–टीकाकार–डॉ0 धीरेन्द्र मिश्र–3/2
5. नलविलास–टीकाकार–डॉ0 धीरेन्द्र मिश्र–पृष्ठ–70

6. नलविलास–टीकाकार–डॉ0 धीरेन्द्र मिश्र–3/3
7. नलविलास–टीकाकार–डॉ0 धीरेन्द्र मिश्र–पृष्ठ–71
8. नलविलास–टीकाकार–डॉ0 धीरेन्द्र मिश्र–3/23
9. नलविलास–टीकाकार–डॉ0 धीरेन्द्र मिश्र–पृष्ठ–92
10. नलविलास–टीकाकार–डॉ0 धीरेन्द्र मिश्र–3/24
11. नलविलास–टीकाकार–डॉ0 धीरेन्द्र मिश्र–3/30
12. नलविलास–टीकाकार–डॉ0 धीरेन्द्र मिश्र–5/9
13. नलविलास–टीकाकार–डॉ0 धीरेन्द्र मिश्र–पृष्ठ–136
14. नलविलास–टीकाकार–डॉ0 धीरेन्द्र मिश्र–6/4
15. नलविलास–टीकाकार–डॉ0 धीरेन्द्र मिश्र–पृष्ठ–151–152
16. नलविलास–टीकाकार–डॉ0 धीरेन्द्र मिश्र–6/8
17. नलविलास–टीकाकार–डॉ0 धीरेन्द्र मिश्र–पृष्ठ–175
18. नलविलास–टीकाकार–डॉ0 धीरेन्द्र मिश्र–6/24
19. नलविलास–टीकाकार–डॉ0 धीरेन्द्र मिश्र–7/1
20. नलविलास–टीकाकार–डॉ0 धीरेन्द्र मिश्र–1/16
21. नलविलास–टीकाकार–डॉ0 धीरेन्द्र मिश्र– पृष्ठ–22–23